शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

वैश्वीकरण के दौर में महामारी और भारतीय संस्कृति

प्राप्तिः 09.12.2022
स्वीकृतः 24.12.2022

84

डॉ० बी०पी० यादव
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
एन०आर०सी० कॉलेज खुर्जा
ईमेलः

सारांश

वैश्वीकरण की व्याख्या करना बहुत कठिन है। कहीं सर्वसम्मति नहीं है। इस सम्बन्ध में हाथी और सात अंधो की कहानी बड़ी प्रासंगिक लगती है। अंधों को यह काम सौंपा गया कि वे हाथी को परिभाषित करें जिसका हाथ हाथी की सूंड पर पड़ा उसने परिभाषा दी कि हाथी किसी रस्सी के आकार का होता है, जिसने पांवों को परखा, कहा कि हाथी खम्भों जैसा होता है– और यह पुरानी कहानी हर अन्धे की परिभाषा के इर्द–गिर्द घूमती है। कुछ विचारक इसे एक आर्थिक अवधारणा मात्र समझते हैं। उनके लिए वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण और निवेश है। यह सब बाजार की स्थिति में होता है। कुछ विचारक वैश्वीकरण का अर्थ सांस्कृतिक आदान–प्रदान के सन्दर्भ में निकालते हैं और कुछ की दृष्टि में वैश्वीकरण वह वृहद सामाजिक प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण मानव जीवन को अपने अन्दर समा लेती है। कुछ मार्क्सवादी इस प्रक्रिया को मुक्ति देने वाली प्रक्रिया मानते हैं। वैश्वीकरण और कोरोना महामारी जो कि वैश्विक स्तर पर फैल चुका है, के दौर में भारतीय संस्कृति के अस्तित्व की अगर बात सीधे और संक्षिप्त शब्दों में करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां एक ने हमारी संस्कृति, मूल्य व परंपरा को निराधार कर दिया था वहीं दूसरे के दौर में भारतीय संस्कृति, परंपरा वैश्विक स्तर पर प्रकाश स्तंभ के रूप में उज्जवलित हुई है। कोविड– 19 के इस महामारी से जहां पूरा विश्व शारीरिक–मानसिक रूप से आक्रान्त है वहीं विभिन्न देश भारतीय संस्कृति व परंपरा से आशा और विश्वास की सीख ले रहा है। हम भारतीयों के लिए यह बहुत ही गर्व की बात है कि भारत में जहां योग, आध्यात्म, सात्विकता की शिक्षा दी जाती थी आज उसी शिक्षा का पालन अन्य देश कर रहे हैं। दरअसल वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हम भारतीयों को अपनी चकाचौंध में इस तरह भ्रमित कर दिया था कि हम खुद जाने अनजाने में ही कब उस प्रक्रिया का हिस्सा बनकर अपने मूल्यों को भूलने लगे थे।

मुख्य बिन्दु

वैश्वीकरण, महामारी, भारतीय संस्कृति, मानव जीवन।

वैश्वीकरण एक जटिल, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया है। यह दो धारी तलवार है। इसके फायदे और नुकसान दोनों हैं। इसने विकास की असीम सम्भावनाएँ

उपस्थित की है, जबकि विनाश के पर्याप्त तत्व भी इसमें मौजूद हैं। ऐतिहासिक विकास के क्रम में इसे अपने हितों के अनुरूप ढालना हम सबका युग धर्म है। समाज विज्ञान की दृष्टि से वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न सम्बन्ध है। यह पूँजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिए आधुनिकीकरण, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबन्धन निर्माण के साथ उत्पन्न हो रही है।

कुछ विचारक इसे एक आर्थिक अवधारणा मात्र समझते हैं। उनके लिए वैश्वीकरण उदारीकरण, निजीकरण और निवेश है। यह सब बाजार की स्थिति में होता है। कुछ विचारक वैश्वीकरण का अर्थ सांस्कृतिक आदान–प्रदान के सन्दर्भ में निकालते हैं और कुछ की दृष्टि में वैश्वीकरण वह वृहद सामाजिक प्रक्रिया है जो सम्पूर्ण मानव जीवन को अपने अन्दर समा लेती है। कुछ मार्क्सवादी इस प्रक्रिया को मुक्ति देने वाली प्रक्रिया मानते हैं ।

राबर्ट्सन के अनुसार ''वैश्वीकरण दुनिया के दबाव और दुनिया की चेतना के तीव्रीकरण दोनों से संयुक्त रूप से सम्बन्धित है। वैश्वीकरण लादने का दबाव तेजी से बढ़ा है, किन्तु इसने अन्तरात्मक शक्ति प्रदान किया।''

"वैश्वीकरण अन्तर्वेशन और वहिष्करण की एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें विश्व बाजार, विभिन्न आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं, मल्टीमीडिया, प्रौद्योगिकी तथा संस्कृति आदि के एकीकरण का अन्तर्वेशन हो रहा है जबकि राष्ट्र–राज्य की प्रभुसत्ता और स्वदेशीयता आदि का बहिष्करण हो रहा है।"

थॉमस फ्राइडमैन के अनुसार ''वैश्वीकरण वास्तव में बाजारों, अर्थव्यवस्था और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण है। इसमें विश्व का मध्यम से छोटे रूप में ऐसा संकुचन हो रहा है जिससे हम सभी दुनिया के हर कोने में इतनी जल्दी और सस्ते में पहुँच जायें जितने में पहले कभी सम्भव नहीं था। पूर्व की सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं की भांति यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में घरेलू राजनीतियों, आर्थिक नीतियों तथा सभी देशों के विदेशी सम्बन्धों को स्वरूप प्रदान कर रहा है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया समय और दूरी का राष्ट्र राज्य से आगे संकुचन उत्पन्न करती है। वैश्वीकरण की वर्तमान धारा का उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न सम्बन्ध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद, प्रौद्योगिकी और सूचना के जरिये आधुनिकीकरण, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबन्धन निर्माण के साथ ही सम्पन्न हो रही हैं इसे सूचना तकनीकी तथा जैव प्रौद्योगिकी में हो रहे क्रान्तिकारी परिवर्तनों से गति मिली है।

सर्वप्रथम समाजशास्त्रीय अवधारणा के रूप में 'वैश्वीकरण' का प्रयोग करने का श्रेय पिट्सवर्ग विश्वविद्यालय के रोलैण्ड राबर्ट्सन को जाता है। राबर्ट्सन मुख्य रूप से विरोधाभासों की उपस्थिति, प्रतिरोध और इसके बराबर की शक्तियों, अस्वीकार किये गये नियमों व प्रवृत्तियों के एक द्वन्द की उपस्थिति, स्थानीय वैश्विक, विशेष व सार्वभौमिक, एकता व विभेदीकरण के रूप में वैश्वीकरण को स्वीकार करने पर बल देते हैं।

परिवर्तन ही सृष्टि है, जीवन है, स्थिर होना मृत्यु है। यह पंक्ति मानवीय जीवन, समाज, सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक मान्यताए, दृष्टिकोण आदि सभी पर लागू होती है। यह परिवर्तन ही तो है जिसके जरिये आज हम सामाजिक दूरत्व को मानते हुए भी आपस में जुड़कर अपने भावों को

संप्रेशित कर पा रहे हैं। तकनीक द्वारा एक आभासी दुनिया का निर्माण करके। पर परिवर्तन उसी सीमा तक ग्राह्य होनी चाहिए जब तक वह हमारे मानवीय, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक मूल्य को क्षत् विक्षत् न करे। यह कहना भी गलत नहीं होगा कि आज के इस कठिन समय में भारतीय संस्कृति विश्व के अन्य देशों में अपनी गरिमा, महता और प्रभाव स्थापित कर सबको दिशा–निर्देश कर रही है। कोविड– 19 के इस महामारी से जहां पूरा विश्व शारीरिक–मानसिक रूप से आक्रान्त है वहीं विभिन्न देश भारतीय संस्कृति व परंपरा से आशा और विश्वास की सीख ले रहा है। हम भारतीयों के लिए यह बहुत ही गर्व की बात है कि भारत में जहां योग, आध्यात्म, सात्विकता की शिक्षा दी जाती थी आज उसी शिक्षा का पालन अन्य देश कर रहे हैं। दरअसल वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हम भारतीयों को अपनी चकाचौंध में इस तरह भ्रमित कर दिया था कि हम खुद जाने अनजाने में ही कब उस प्रक्रिया का हिस्सा बनकर अपने मूल्यों को भूलने लगे थे। प्रतिस्पर्धा और प्रतियोगिता के होड़ में हम मानवीय और नैतिक मूल्यों को भूला बैठे थे। संस्कृति के मूल भाव आत्मीयता, संवेदना और सहानुभूतिशीलता को खत्म कर मशीनीकरण की इस सभ्यता में हम भी मशीन बन चुके थे। सच कहे तो हम आज मशीन के पुर्जे बन चुके हैं। जीना शब्द में किसे जीने और कैसे जीने की बात करता है हम उससे अनभिज्ञ थे। वैश्वीकरण की बदौलत बाजार और बाजार की चमक दमक और दिखावा को ही जीने का असली अर्थ मान लिया था। पर आज कोविड– 19 से उत्पन्न विषम परिस्थिति ने हमें सिखाया वास्तविक जीना क्या है।

वैश्वीकरण और वैश्विक महामारी दो अलग अलग स्थितियां हैं। पहली स्थिति का हम हिस्सा बन चुके हैं और दूसरी तात्कालिक स्थिति से अभी गुजर रहे हैं। इन दोनों स्थितियों में भारतीय संस्कृति की भूमिका को देखने का प्रयास करेंगे। भारत विश्व के सर्वाधिक प्राचीनतम सभ्यता, समृद्ध संस्कृति और अधिकतम आबादी वाले देशों में से एक है। विशाल जनसंख्या वाले देश भारत के चारों कोनो में अलग अलग राज्य के अलग अलग भाषायी लोगों में असमान भौगोलिक परिस्थितियों की तरह धर्म, नीति, त्योहार, रहन सहन, तौर तरीकों, पहनावा, खानपान आदि को लेकर विभिन्नता पायी जाती है। यह विभिन्नता ही भारत को एक विविध संस्कृति वाला देश बनाती है। इस तरह भौगोलिक दृष्टि से विविधतापूर्ण देश होने पर भी भारत सांस्कृतिक रूप से एक इकाई में बंधा है। भारत की विविधता या अनेकता में भी एक समानता एक एकत्व का भाव है और इस भाव को जोड़ने का काम करती है हमारी संस्कृति–भारतीय संस्कृति। संस्कृति का निर्माण युग युगान्तर में होता है। विश्व बंधुत्व और लोकमंगल की भावना लिये भारतीय संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकम् सिद्धान्त को मानती है अर्थात समस्त विश्व एक कुटुम्ब या परिवार के समान है। यही सिद्धान्त हम में आपसी सौहार्द और भाईचारे की भावना को जगाता है। सर्वे भवन्तु सुखिनः सिद्धान्त विश्वशान्ति का मार्ग प्रशस्त करने में सक्षम है।

भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्वों, जीवन मूल्यों व पद्धतियों को बाहरी शक्ति प्रभावित नहीं कर पायी। ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति हमारी संस्कृति को उदार बनाती है। प्राचीन काल से भारत में विभिन्न प्रजातियों जैसे शक, हूण, यूनानी आदि का आगमन होता रहा, मध्यकाल में इस्लाम धर्म और आधुनिक काल में ईसाई धर्म का भी आगमन हुआ। इन सभी नवागत संस्कृतियों ने लंबे समय तक भारत में अपना दबाव बनाये रखा था, बावजूद इसके भारतीय संस्कृति का पृथक अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहा। भारतीय संस्कृति में 'धर्म' की जो अवधारणा है वह किसी धर्म विशेष से संबंधित नहीं बल्कि यहां धर्म धारणा धर्मम: इत्यते माना जाता है अर्थात् जिन गुणों या लक्षणों को धारण किया जा सके

या जो गुण हमारी पहचान होतो हैं वही धर्म है। यहां धर्म मानव धर्म से जुड़ा है, अर्थात भारतीय संस्कृति मानव मूल्यों पर आधारित एक जीवन पद्धति है। संस्कृति से संस्कार का निर्माण होता है और संस्कृति मानवीय चेतना को संस्कारित, परिष्कृत करने का क्रम है। नदियों, वृक्षों जैसे वट, पीपल, सूर्य तथा अन्य प्राकृतिक देव–देवियों की पूजा करने का क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है। प्रकृति से निकटता और पूजा पाठ की पद्धतियां आज भी निरंतर बनी हुई है। भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक पक्ष काफी सुदृढ़ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरूषार्थ ने आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का सुन्दर समन्वय कर दिया है। धर्म और मोक्ष का आध्यात्मिक संदेश अर्थ और काम की भौतिक अनिवार्यता से सम्बद्ध है। आज इसी मोक्ष की शिक्षा विश्व के अन्य देश भारत से ले रहे हैं।

मानवीय संबंध अपने मूर्तरूप को खोकर अमूर्त बन गये। मनुष्य एकरसता का हिस्सा बन गया, वह सतही तौर पर जीने लगा है। समाज के साथ संवाद खत्म होने के कारण वह असंतोष, खालीपन और नकलीपन के साथ जीता है। पूंजीवादी व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा प्रौद्योगिकी ने मनुष्य को यंत्रवत् बना दिया और वह एक पूर्जे की तरह काम करता है। तकनीक के विकास के साथ ही धीरे–धीरे वह तकनीक का गुलाम, उसके गिरफ्त में आ जाता है। उसकी सामान्य दिनचर्या तकनीक द्वारा निर्धारित होने लगी। मनुष्य आज यंत्रों के जाल में जकड़ हुआ है। कारखानों से धूल और धुंआ तथा औद्योगीकरण से भीड़ बढ़ने लगी, विद्युतीकरण से यंत्रों और तारों का जंगल बुनने लगा। इन स्रोतों से, उत्पादन की विकसित प्रणाली, संचार के समुन्नत तरीकों, ऊर्जा के विभिन्न संसाधनों ने मनुष्य की गुणवत्ता और श्रम– क्षमता को समाज में समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। पर यह भी सच है कि इस समुन्नत प्रौद्योगिकी, मशीनीकरण तथा भूमंडलीकरण ने मनुष्य के अस्तित्व और पहचान को भी संकट में डाल दिया।

20वीं सदी के अंतिम दशकों में इस शब्द का व्यापक प्रयोग होने लगा। भूमंडलीकरण में पूरे भूमंडल को एक करने की आकर्षक संकल्पना की गई थी पर वास्तव में यह पूरे विश्व के एक धुरुवीय होने के बाद भूमंडलीकरण के जरिये अमेरिका के नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विश्व के बाजार पर कब्जा करने का मूल उद्देश्य था। इस उद्देश्य में वह सफल भी हुए। विश्व को एक करने की मंगल धारणा के पीछे का निहितार्थ उल्टा था। विश्व को एक करने की दृष्टि पूरी तरह एक आयामी रही। अर्थात् इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से व्यापार केन्द्र में रहा जिसमें व्यापार वाणिज्य के लिए ही विश्व को एक करने की धारणा बनी। तकनीक के विकास ने तत्काल इंटरनेट की सुविधा द्वारा ई–कॉमर्स का निमार्ण करके पूरे संसार को वैश्विक गांव Global Village का रूप दिया, हालांकि इस गांव की संकल्पना में समाज का संपन्न वर्ग अपने व्यापारिक और उत्पादन संबंधी हितों के लिए एक–दूसरे से जुड़ता है। बाजारवाद, वैश्वीकरण आदि ने राष्ट्र की सीमाओं को पूरी तरह खारिज करते हुए समग्र पृथ्वी को विश्वग्राम में बदल दिया है। आज राष्ट्र राज्य की संकल्पनाएं निरर्थक हो चुकी है और उत्तर आधुनिकता में इतिहास के अंत की बात होने लगी है। विश्व बाजार का गठन करने के बाद बाजार पर एकाधिकार करने के लिए पूंजीपति बड़े उद्योग समूहों के साथ आर्थिक संबंध गढ़ते हैं। इस संदर्भ में मार्क्स लिखते हैं– 'विश्व बाजार का अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर पूंजीपतिवर्ग ने हर देश में उत्पादन और खपत को एक सार्वभौम रूप दे दिया है। प्रतियोगिता की भावनाओं को गहरी चोट पहुंचाते हुए उसने उद्योग के पैरों के नीचे से उस राष्ट्रीय आधार को खिसका दिया है जिस पर वह खड़ा था।' संक्षेप में, पूंजीपति वर्ग सारी दुनिया को अपने ही सांचे में ढाल लेता है।

वैश्वीकरण के दौर में उपभोक्तावाद छूत की बीमारी की तरह चारों तरफ फैल गया और भारत भी इससे संक्रमित हो गया। विश्व के बाजार में बड़ी–बड़ी कंपनियां नये–नये उत्पादों को आकर्षक विज्ञापनों के द्वारा प्रस्तुत कर ज्यादा से ज्यादा उपभोग करने को बढ़ावा दे रही हैं और इसका प्रमुख शिकार हो रहा है मध्यवर्गीय परिवार। पहले मनुष्य उन चीजों का उत्पादन करता था जिनकी उसे जरूरत थी पर उपभोक्तावादी संस्कृति ने उपभोग को जीवन की बुनियादी जरूरत बनाकर उन अनावश्यक चीजों को उत्पादित करने और खरीदने के लिए मजबूर कर दिया जिसकी हमें आवश्यकता नहीं। यहां जरूरत के लिए नहीं मुनाफा कमाने या लाभ कमाने के लिए उत्पादन और प्रचार होने लगा। समाज का एक वर्ग जहां उपभोग और विलासिता में डूबा है वहीं दूसरा वर्ग न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ है। पैसों की अंधी दौड़ में व्यक्ति आत्मकेन्द्रित और संवेदनहीन होता जा रहा है। वैश्वीकरण की देन उपभोक्तावादी संस्कृति आज के समय में प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक समुदाय के रूप में हमारे सामने आती है। इस समुदाय ने विश्व की हर छोटी–बड़ी संस्कृतियों को आत्मसात कर लिया है। आत्मसात की प्रक्रिया में सारी परंपरागत सीमाओं, बंधनों, नियमों और मर्यादाओं को भी तोड़ रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में धर्म, राष्ट्र, भाषा, संस्कृति, इतिहास की अवधारणा को ही खत्म कर दिया है। वैश्वीकरण के पैरोकारों का यह मानना है कि अपनी राष्ट्रीयता, भाषा या संस्कृति के बारे में सोचना विकास की सहज गति को अवरूद्ध करना है। भारत भी इसके प्रभाव से मुक्त नहीं है।

भारतीय संस्कृति "स" वर्ण की महत्ता सिखाती है– सेवा, सदाचार, सहानुभूति, संवेदनशीलता की शिक्षा प्राचीन से दी जाती रही है। आत्मकेन्द्रित बन बैठा मनुष्य आज इस भयंकर कठिन समय में दूसरों के प्रति संवेदनशील बना है। मानव मूल्य को समझकर दुख का समभागी होकर सहानुभूति प्रकट कर रहा है। पूरे देशभर में तालाबंदी के इस समय में संपन्न वर्ग दूसरों की मदद करने के लिए आगे बढ़ रहा है। खाने–पीने के सामान से लेकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर जरूरी चीज उपलब्ध कराने में लोग एकजुट होकर काम कर रहे हैं। राहत कोश में धनराशी देने में भी लोग पीछे नहीं हैं। यह अपने में ही कितनी बड़ी बात है कि हम आज अपने अहम को त्यागकर दूसरे के प्रति संवेदनशील हो पा रहे हैं। सादा जीवन सात्विक भोजन की बात हमारी संस्कृति आदिकाल से ही करती आ रही है। आधुनिक युग के उपभोक्तावादी समाज का अंग बनकर हमने चमक दमक, रंग–राग, दिखावेपन को ही जीवन मान लिया था। भोजन के भी विविध प्रकार के पकवान, विभिन्न देशों के खाद्य के. एफ. सी, मैक्डोनल्डस हमें अधिक स्वादिष्ट लगते हैं। वैश्विक स्तर का रहन सहन तथा हैंडशेक करना हमारा स्टेट्स सिंबल बन चुका था। कोरोना महामारी ने इस भ्रम को तोड़कर हमें वास्तविकता दिखलायी कि मानव जीवन न्यूनतम में भी चल सकता है। हाथ जोड़कर परिचय देना हमारी संस्कृति की पहचान के साथ ही इस महामारी से बचने का उपाय भी है। विवाह, भोज आदि किसी भी आयोजन में दिखावा सबसे ऊपर था और संबंधियों से आत्मीय जुड़ाव नहीं रहा पर आज विवाह आत्मीय कुटुम्ब जन के साथ मिलकर सादे ढंग से हो रहे हैं। प्रकृति प्रेम, प्रकृति से जुड़ाव न केवल हमारी संस्कृति बताती है बल्कि भारतीय साहित्य में भी प्रकृति चित्रण सर्वोपरि है। प्रकृति के दोहन का अर्थ हमने शोषण के रूप में लिया जिसका फल आज भूकंप, बाढ़, तूफान, महामारी आदि के रूप में झेल रहे हैं। प्रकृति पर नियंत्रण करना चाहते थे, वही हमारी भूल हुई। प्रकृति सर्वशक्तिमान है। आध्यात्म और योग की महत्ता भारतीय संस्कृति की

विशिष्टता है। विश्व भर में योग की शिक्षा सर्वप्रथम भारत ने दी। आज के इस दौर में योग की क्या भूमिका है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

विज्ञान और तकनीक केन्द्रित होकर हमने अपने पारंपरिक मूल्य को खो दिया था। हमारे पारंपरिक मूल्य जो आस्था, विश्वास, आशा की बात करते हैं। इस महामारी ने मानव समाज को निराशा, हताशा, भय से भर दिया पर आज भी हमारे मन में आशा का दीप जला हुआ है। हम आस्थावान हैं, महामारी खत्म होगी नयी पृथ्वी, नया जीवन शुरू होगा, ऐसा विश्वास हम सभी के मन में है। कर्म की महत्ता ने हमें उद्यमी बनाया है। इस संकट काल में भी कर्मस्पृहा ने ही हमें बौद्धिक रूप से सचेत किया और सृजनशील बनाया। आधुनिकीकरण ने हमारी धारणाओं एवं मानसिकता को बदल दिया था, उदा. पहले किसी को सीधा व्यक्ति कहने पर सज्जन मान लिया जाता था, आज उसे मूर्ख व्यक्ति मान लेते हैं। इस तरह की मानसिकता पर कोविड– 19 ने प्रहार किया और हमारी चेतना वापस लौट आयी है। यहां ध्यान देना आवश्यक है कि जीवन के प्रति हमारा जो नई दृष्टिकोण बना है या न्यूनतम में जीने की जीवनशैली जो हमने अपनायी है उसे स्थायित्व देना होगा और इस नई चेतना को जागृत रखना है।

निष्कर्षत

पूंजीवाद, आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव और उसकी नयी ऊर्जा से मानव जाति, समाज एवं प्रकृति का नैसर्गिक सौन्दर्य एवं संतुलन दोनों बिगड़ गये। यह त्रिकोणीय प्रभाव जहां विश्व की अन्य संस्कृतियों पर लगातार आक्रमण किये जा रहा है वही भारतीय संस्कृति अपनो मूलभूत तत्वों के साथ आज भी सदृढ़ खड़ी है। हमारी संस्कृति व मूल्य कभी वैश्वीकरण की पक्षधर नहीं रही, उसने सदैव अर्थ की जगह प्रेम, भाव, संबंध को मूल्य दिया है। मनुष्य के मनुष्यत्व, संवेदन, सहानुभूति जैसे श्रेष्ठतम तत्वों की बात संस्कृति करती है और हमारा साहित्य उन तत्वों को अभिव्यक्त करता है। भारतीय संस्कृति त्याग तथा आत्मिक केन्द्रित है और पाश्चात्य संस्कृति भोग तथा भौतिकता पर आधारित है। वैश्वीकरण के दौर में हम उस आत्मिक सुख को छोड़कर भौतिक सुख के पीछे भाग रहे थे पर कोविड– 19 की इस महामारी ने आज भारतीय संस्कृति को प्रासंगिक बनाया है। निस्संदेह भारतीय संस्कृति मानव जाति के विकास का उच्चतम स्तर और आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है।

संदर्भ

1. प्रकाश, रवि. (2005). ''वैश्वीकरण एवं समाज.'' शेखर प्रकाशनः इलाहाबाद. पृष्ठ 315.
2. इण्डा, जान्थन. (2002). सेस्वीयर एण्ड रीनाल्टी : एन्थ्रोपोलॉजी ऑफ ग्लोबलाइजेशन. ए, रीडर आक्सफोर्ड ब्लैक वेल पब्लिशर्स. पृष्ठ 2.
3. राबट्सन, आर. (1998). ग्लोबलाइजेशन, ''सोशल थियरी एण्ड ग्लोबल कल्चर''. सेज पब्लिकेशन्सः लन्दन. पृष्ठ 64.
4. फ्राइडमैन, थॉमस. (1999). ''ग्लोबलाइजेशन, द लेक्सस एण्ड द ओलिव ट्री न्यूयार्क. फार स्ट्रौस जिराक्स. पृष्ठ 110.
5. पाण्डेय, रवि प्रकाश. (2004). कन्क्लूजीव सिनॉप्सीस ऑफ इण्टरनेशनल सेमिनार ऑन ग्लोबलाइजेशन पावर्टी. हेल्ड ऑन 4–6 दिसम्बर. आर्गनाइज्ड वाई.एम.जी. काशी विद्यापीठः वाराणसी. पृष्ठ 01.

6. हॉल, स्टुअर्ट. (1996). क्वेश्चन ऑफ कल्चरल आइडेन्टिटी इन माडर्निटी एन इट्रोडक्शन टू माडर्न सोसाइटी स्टूअर्ट हाल, डेविड हेल्ड. डॉन हावर्ट एण्ड केन्नेय थॉमसन इड्स कम्ब्राइड. ब्लैक वाल पब्लिशर. पृष्ठ 619.
7. गिलीपीन, आर. (1987). 4 पालिटिकल, इकोनामी ऑफ इण्टरनेशनल रिलेशन्स. प्रिन्सेटॉन यूनिवर्सिटी.
8. वाटर्स, एम. (1995). ग्लोबलाइजेशन. राउटलेट्जः लन्दन. पृष्ठ 38.
9. टाम्लीन्सन, जे. (1999). ग्लोबलाइजेशन एण्ड कल्चर. पालिटी प्रेसः कम्बाइड, यू0के0. पृष्ठ 16.
10. वेटर्स, एम. (1995). ''ग्लोबलाइजेशन''. राउटलेट्जः लन्दन. पृष्ठ 04.
11. डॉ. अमरकान्त. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली. राजकमल प्रकाशनः नई दिल्ली.
12. श्रीवास्तव, डॉ. रवि. उत्तर आधुनिकता विभ्रम और यथार्थ. नेशनल पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली.